International Journal of Enhanced Research in Management & Computer Applications
ISSN: 2319-7471, Vol. 4 Issue 10, October-2015

गुप्तकालीन समाज एवं अर्थव्यवस्था

Naveen

Research Scholar, Dept. of History, MDU Rohtak

परिचय

गुप्त कला का विकास भारत में गुप्त साम्राज्य के शासनकाल में (२०० से ३२५ ईस्वी में) हुआ। इस काल की वास्तुकृतियों में मंदिर निर्माण का ऐतिहासिक महत्त्व है। बड़ी संख्या में मूर्तियों तथा मंदिरों के निर्माण द्वारा आकार लेने वाली इस कला के विकास में अनेक मौलिक तत्व देखे जा सकते हैं जिसमें विशेष यह है कि ईंटों के स्थान पर पत्थरों का प्रयोग किया गया। इस काल की वास्तुकला को सात भागों में बाँटा जा सकता है- राजप्रासाद, आवासीय गृह, गुहाएँ, मन्दिर, स्तूप, विहार तथा स्तम्भ।

चीनी यात्री फाह्यान ने अपने विवरण में गुप्त नरेशों के राजप्रासाद की बहुत प्रशंसा की है। इस समय के घरों में कई कमरे, दालान तथा आँगन होते थे। छत पर जाने के लिए सीढ़ियाँ होती थीं जिन्हें सोपान कहा जाता था। प्रकाश के लिए रोशनदान बनाये जाते थे जिन्हें वातायन कहा जाता था। गुप्तकाल में ब्राह्मण धर्म के प्राचीनतम गुहा मंदिर निर्मित हुए। ये भिलसा (मध्य-प्रदेश) के समीप उदयगिरि की पहाड़ियों में स्थित हैं। ये गुहाएँ चट्टानें काटकर निर्मित हुई थीं। उदयगिरि के अतिरिक्त अजन्ता, एलोरा, औरंगाबाद और बाघ की कुछ गुफाएँ गुप्तकालीन हैं। इस काल में मंदिरों का निर्माण ऊँचे चबूतरों पर हुआ। शुरू में मंदिरों की छतें चपटी होती थीं बाद में शिखरों का निर्माण हुआ। मंदिरों में सिंह मुख, पुष्पपत्र, गंगायमुना की मूर्तियाँ, झरोखे आदि के कारण मंदिरों में अद्भुत आकर्षण है।

गुप्तकाल में मूर्तिकला के प्रमुख केन्द्र मथुरा, सारनाथ और पाटिलपुत्र थे। गुप्तकालीन मूर्तिकला की विशेषताएँ हैं कि इन मूर्तियों में भद्रता तथा शालीनता, सरलता, आध्यात्मिकता के भावों की अभिव्यक्ति, अनुपातशीलता आदि गुणों के कारण ये मूर्तियाँ बड़ी स्वाभाविक हैं। इस काल में भारतीय कलाकारों ने अपनी एक विशिष्ट मौलिक एवं राष्ट्रीय शैली का सृजन किया था, जिसमें मूर्ति का आकार गात, केशराशि, माँसपेशियाँ, चेहरे की बनावट, प्रभामण्डल, मुद्रा, स्वाभाविकता आदि तत्त्वों को ध्यान में रखकर मूर्ति का निर्माण किया जाता था। यह भारतीय एवं राष्ट्रीय शैली थी। इस काल में निर्मित बुद्ध-मूर्तियाँ पाँच मुद्राओं में मिलती हैं- १. ध्यान मुद्रा २. भूमिस्पर्श मुद्रा ३. अभय मुद्रा ४. वरद मुद्रा ५. धर्मचक्र मुद्रा।

गुप्तकाल चित्रकला का स्वर्ण युग था। कालिदास की रचनाओं में चित्रकला के विषय के अनेक प्रसंग हैं। मेघदूत में यक्ष-पत्नी के द्वारा यक्ष के भावगम्य चित्र का उल्लेख है।

गुप्तकालीन मूर्ति शिल्प

गुप्त काल में अर्थव्यवस्था

गुप्तकाल में समाज, धर्म, कला, साहित्य व विज्ञान के विकास के साथ ही एक मजबूत आर्थिक ढाँचे का गठन हुआ। विभिन्न क्षेत्रों में गुप्तकाल की उपलब्धियों के कारण ही इसे **क्लासिकल एज** की संज्ञा दी गई है। गुप्तकाल के सांस्कृतिक विकास में इसकी आर्थिक समृद्धि का प्रमुख योगदान रहा है। कृषि, उद्योग और व्यापार में इस काल में काफी वृद्धि हुई। कई इतिहासकारों ने गुप्तकाल के अंतिम चरण में सामंतवाद का उदय बताया है और सामन्तीय व्यवस्था को देश की अर्थव्यवस्था के विघटन का संकेत माना जाता है। गुप्तकाल क्लासिकल युग था अथवा अर्थव्यवस्था के धीरे-धीरे ह्रास का काल, यह एक अत्यन्त विवादास्पद तथ्य है।

कृषि- सामान्यतः भूमि पर कृषक का ही स्वामित्व माना जाता है। मनु और गौतम जैसे स्मृतिकारों ने राजा को भूमि का स्वामी माना है, परन्तु मनु दूसरी जगह कहते हैं कि भूमि उसकी होती है जो उसे आबाद करता है। दूसरी तरफ बृहस्पति और नारद भूमि का स्वामी उसे मानते हैं जिसके पास कानूनी दस्तावेज हो। शबरस्वामि के अनुसार साधारण मनुष्य खेत के स्वामी होते हैं। राजा भी पूरी भूमि का स्वामी नहीं होता है, उसकी भी निजी भूमि होती है। प्राचीन काल में राजा सामान्यतः उपज के 1/6 भाग का अधिकारी माना गया है। यह भाग प्रजा की सुरक्षा करने के लिए, राजा को प्रजा द्वारा प्रदान किया जाने वाला कर था। राजा अपनी निजी भूमि में से ही भूदान आदि करता था। राजा द्वारा लिया जाने वाला कर **भाग, भोग कर** आदि कहलाता था। लगान के निर्धारण व की प्रतिष्ठा के संदर्भ में व्यापक विवरणों का अभाव है। कर के निर्धारण में भूमि की प्रकृति का ध्यान रखा जाता होगा।

स्मृतियों एवं बृहतसंहिता, अमरकोश, कालिदास की रचनाओं आदि से गुप्तकालीन कृषि के बारे में जानकारी मिलती है। गुप्तकाल में कृषि परम्परागत तरीकों से ही होती थी। हल में लोहे के फाल का प्रयोग किया जाता था। बृहस्पति व नारद की स्मृतियों में उनके लिए कठोर दण्ड की व्यवस्था की गयी है जो कृषि उपकरणों को क्षति पहुँचाते थे। कृषि में हल के महत्त्व के कारण ही उसे पवित्र माना जाने लगा। **सीर-यज्ञ** के आयोजन से भी इसका महत्त्व स्पष्ट हो जाता है। कृषि में अच्छे बीजों का महत्त्व माना गया था। वराहमिहिर ने **बृहतसंहिता** में बीजों की गुणवत्ता बढ़ाने व धरती की उर्वरा शक्ति में वृद्धि के तरीके बताए हैं। गुप्तकाल में कृषि व्यवस्था में राजा का हस्तक्षेप पहले की तुलना में बढ़ गया था। अमरकोश में बारह प्रकार की भूमि का उल्लेख है- उर्वरा, ऊसर, मरू, अप्रहत, सद्वल, किल जलप्रायमनुपम, कच्छा, शर्करा, शकविती, नदीमातृक, देवमातृक। आर्थिक उपयोगिता की दृष्टि से भूमि को कई भागों में विभाजित किया गया है- 1. वास करने योग्य भूमि-वास्तु, 2. चारागाह भूमि, 3. खेती के उपयुक्त भूमि-क्षेत्र, 4. नहीं जोती जाने वाली भूमि-सील, 5. बिना जोती गयी जंगल भूमि-अप्रहत। गुप्तकालीन अभिलेखों में भू धारण पर प्रकाश डालने वाली पाँच शब्दावलियाँ हैं

1. नीवीधर्म- इसके अन्तर्गत दानग्रहिता को सदा के लिए भूमि दे दी जाती थी।

2. अक्षयनीवी धर्म- संभवत: सबसे पहले कुषाणों ने किसानों को अक्षयनीवी पद्धति पर भूमि दी थी। इसके अनुसार किसान उस भूमि से प्राप्त आय का उपभोग कर सकता था। किन्तु वह उस जमीन का हस्तातरण नहीं कर सकता था। गुप्तकाल में भूमि खरीदकर अक्षयनीवी पद्धति पर ब्राह्मणों को दान में भी दी जाने लगी।

3. नीवी धर्म अक्षयन- इसके अनुसार नीवी धर्म समाप्त कर यह भूमि दूसरे को दी जा सकती थी।

4. अप्रदानीवी धर्म- दानग्रहिता को इस भूमि पर प्रशासनिक अधिकार नहीं था और न वह किसी अन्य व्यक्ति को भूमि दे सकता था।

सिक्के

गुप्तकालीन सिक्के बहुतायत में प्राप्त हुए हैं। उत्तर प्रदेश से बड़ी संख्या में गुप्तकालीन सिक्कों की निधियाँ प्राप्त हुई हैं। गुप्त साम्राज्य के विभिन्न भागों में सिक्कों के 16 ढेर प्राप्त होते हैं। इनमें सबसे महत्त्वपूर्ण बयाना (भरतपुर) क्षेत्र का ढेर है। चन्द्रगुप्त प्रथम और समुद्रगुप्त के प्रारंभिक सोने के सिक्के 118-122 ग्रेन के थे। इन शासकों ने कुषाणों के मानदंड को आधार बनाया था। गुप्त अभिलेख में उसे दीनार कहा गया था। चन्द्रगुप्त द्वितीय ने पहली बार कुषाणों के मानदंडों का परित्याग किया। उसके स्वर्ण सिक्के 124-132 ग्रेन के हैं। स्कंदगुप्त ने स्वर्ण सिक्के के दीनार मॉडल को छोड़ दिया। उसके स्वर्ण सिक्कों के वजन अधिक हैं किन्तु उसमे स्वर्ण की मात्रा कम है। चांदी के सिक्के सबसे पहले चन्द्रगुप्त द्वितीय ने जारी किए। उसने शक मॉडल को छोड़कर कार्षापण मॉडल को अपनाया। अधिकतर गुप्त सिक्के सुवर्ण व् चांदी के हैं। गुप्तकाल में इनकी तौल 125 से 127 ग्रेन प्रचलित थी। स्कन्धगुप्त के सिक्के 144 ग्रेन के भी हैं। कुछ विद्वान् यह मानते हैं की गुप्तकाल में अर्थव्यवस्था में ह्रास हुआ। इसका आधार परवर्ती गुप्त शासकों की मिलावटी मुद्राएँ हैं। जिनमे स्वर्ण के अनुपात में कमी आ गयी थी। कुमारगुप्त प्रथम के अंतिम काल व स्कंदगुप्त के काल में आर्थिक ह्रास परिलक्षित होता है। संभव है इसका कारण हूण आक्रमण रहा हो। फाह्यान का तो यहाँ तक कहना है कि लोग दैनिक कार्यों के लिए कोड़ियों का प्रयोग करते थे। यह स्थिति विरोधाभास लिए हुए है कि एक तरफ सुवर्ण सिक्कों का प्रयोग और दूसरी तरफ कोड़ियों का प्रचलन। इतिहासकार लल्लनजी गोपाल के अनुसार मूल्यों की नीची दरों के कारण चाँदी और सोने के सिक्कों का उपयोग दैनिक जीवन में सीमित था।

आंतरिक व्यापार-

गुप्तकालीन आंतरिक व्यापार **श्रेष्ठि**, **सार्थवाह**, **कुलिक** और **निगम** के माध्यम से संगठित होता था। ग्रामीण क्षेत्रों में दुकानों के अलावा साप्ताहिक हाट भी लगते थे, जहाँ वस्तुओं का क्रय-विक्रय किया जाता था। बाजारों को विपणि की संज्ञा प्रदान की गयी थी। पण्यवीथी (सड़क) के दोनों तरफ दुकानें होती थीं जिन पर लोगों के उपभोग की वस्तुएँ उपलब्ध रहती थीं। अमरकोश में भी सड़क के दोनों ओर दुकानें होने का उल्लेख है। भीटा के उत्खनन से भी यह जानकारी होती है कि सड़कों के दोनों ओर दुकानें होती थीं। **पंचतंत्र** में व्यापार को श्रेष्ठ कहा गया है तथा व्यापार के लिए माल सात विभागों में विभाजित किया गया है- (1) गंधी का व्यवसाय (2) रेहन बट्टे का कार्य (3) पशुओं का व्यापार (4) परिचित ग्राहक का आना (5) माल का झूठा दाम (6) झूठी तौल रखना तथा (7) विदेश में माल पहुँचाना। ऐसे व्यापारी जो अपनी वस्तुओं को घोड़ों, बैलों या अन्य पशुओं अथवा रथों पर लादकर समूह में एक स्थान से दूसरे स्थान पर पैदल जाते-आते थे तथा क्रय-विक्रय करते, **सार्थ** कहलाते थे। सार्थवाह व्यापारियों का नेता होता था। वैशाली से ऐसी कई प्रकार की मुहरें मिली हैं, जिन पर सार्थवाह अंकित है। राजा भी व्यापारिक गतिविधियों में रुचि लेता था और व्यापार को संरक्षण प्रदान करता था। प्रशासन भी

उनके नियमों को मान्यता प्रदान करता था। नारद स्मृति में कहा गया है कि यदि यात्रा करने वाला व्यापारी माल के साथ अपने देश लौटता है और उसकी मृत्यु हो जाती है तो राजा का यह कर्त्तव्य था कि वह माल को तब तक सुरक्षित रखे जब तक उसके उत्तराधिकारी नहीं आते। **सार्थ** के व्यापारियों में एकता होती थीं। ये हानि लाभ के लिए समान रूप से उत्तरदायी होते थे। इनमें व्यापारी, वाहन (घोडे, ऊँट, बैल आदि), भारवाह (माल ढोने वाले लोग), औदारिका (आजीविका के लिए एक स्थान से दूसरे स्थान को जाने वाले लोग), साधु और भिक्षु आदि होते थे। व्यापारिक मागों पर कहीं-कहीं दस्युओं का प्रकोप रहता था। लेकिन फाहयान को अपनी भारत यात्रा के दौरान इसका सामना नहीं करना पडा। इससे इस काल की आन्तरिक सुरक्षा परिलक्षित होती है। आन्तरिक व्यापार स्थल व जल दोनों के माध्यम से होता था। बंगाल में नदियों का बाहुल्य था। संभव है कि वहाँ व्यापार नदियों के द्वारा ही होता होगा। कालिदास के रघुवंश में उल्लेख है कि अयोध्यावासी सरयू के द्वारा व्यापार करते थे। पश्चिम व दक्षिण भारत में व्यापारिक मार्ग अवश्य रहे होंगे। समुद्रगुप्त के दक्षिणापथ विजय का मार्ग और चन्द्रगुप्त के गुजरात विजय के मार्ग आदि से भी आंतरिक व्यापार अवश्य होता होगा। सामान्यत: वैश्य ही व्यापारिक क्षेत्र में सक्रिय रहते थे लेकिन आपद्धर्म में धर्मशास्त्रकारों ने भी ब्राह्मणों को व्यापार करने की छूट दी है। धर्मशास्त्रों में व्यापार करने योग्य व न करने योग्य वस्तुओं की सूची दी गयी है।

गुप्तकालीन कला और स्थापत्य

गुप्त काल में कला की विविध विधाओं जैसे वास्तु, स्थापत्य, चित्रकला, मृदभांड, कला आदि में अभूतपूर्ण प्रगति देखने को मिलती है। गुप्तकालीन स्थापत्य कला के सर्वोच्च उदाहरण तत्कालीन मंदिर थे। मंदिर निर्माण कला का जन्म यहीं से हुआ। इस समय के मंदिर एक ऊँचे चबूतरें पर निर्मित किए जाते थे। चबूतरे पर चढ़ने के लिए चारों ओर से सीढ़ियों का निर्माण किया जाता था। देवता की मूर्ति को गर्भगृह (Sanctuary) में स्थापित किया गया था और गर्भगृह के चारों ओर ऊपर से आच्छादित प्रदक्षिणा मार्ग का निर्माण किया जाता था। गुप्तकालीन मंदिरों पर पार्श्वों पर गंगा, यमुना, शंख व पद्म की आकृतियां बनी होती थी। गुप्तकालीन मंदिरों की छतें प्रायः सपाट बनाई जाती थी पर शिखर युक्त मंदिरों के निर्माण के भी अवशेष मिले हैं।

गुप्तकालीन मंदिर छोटी-छोटी ईटों एवं पत्थरों से बनाये जाते थे। 'भीतरगांव का मंदिर' ईटों से ही निर्मित है।

गुप्तकालीन महत्त्वपूर्ण मंदिर

बौद्ध देव मंदिर

ये मंदिर सांची तथा बोधगया में पाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त दो बौद्ध स्तूपों में एक सारनाथ का 'धमेख स्तूप' ईटों द्वारा निर्मित है जिसकी ऊंचाई 128 फीट के लगभग है एवं दूसरा राजगृह का 'जरासंध की बैठक' काफ़ी महत्त्व रखते हैं।

गुप्तकालीन मंदिर कला का सर्वात्तम उदाहरण 'देवगढ़ का दशावतार मंदिर' है। इस मंदिर में गुप्त स्थापत्य कला अपने पूर्ण विकसित रूप में दृष्टिगोचर होती है। यह मंदिर सुंदर मूर्तियों से जड़ित है, इनमें झांकती हुई आकृतियां, उड़ते हुए पक्षी व हंस, पवित्र वृक्ष, स्वास्तिक फूल पत्तियों की डिज़ाइन, प्रेमी युगल एवं बौनों की मूर्तियां नि:संदेह मन को लुभाते हैं। इस मंदिर की विशेषता के रूप में इसमें लगे 12 मीटर ऊँचें शिखर को शायद ही नज़रअन्दाज किया जा सके। सम्भवतः मंदिर निर्माण में शिखर का यह पहला प्रयोग था। अन्य मंदिरों के मण्डप की तुलना में दशावतार के इस मंदिर में चार मण्डपों का प्रयोग हुआ है।

मूर्तिकला

गुप्तकालीन कला का सर्वोत्तम पक्ष उसकी मूर्तिकला है। इनकी अधिकांश मूर्तियाँ हिन्दू देवी-देवताओं से संबंधित है। गुप्तकला की मूर्तियों में कुषाणकालीन नग्नता एवं कामुकता का पूर्णतः लोप हो गया था। गुप्तकालीन मूर्तिकारों ने शारीरिक आकर्षण को छिपाने के लिए मूर्तियों में वस्त्रों के प्रयोग को प्रारम्भ किया। गुप्तकालीन बुद्ध की मूर्तियों को सारनाथ की बैठे हुए बुद्ध की मूर्ति, मथुरा में खड़े हुए बुद्ध की मूर्ति एवं सुल्तानगंज की कांसे की बुद्ध मूर्ति का उल्लेखनीय है। इन मूर्तियों में बुद्ध की शांत-चिन्तन मुद्रा को दिखाने का प्रयत्न किया गया है। कूर्मवाहिनी यमुना तथा मकरवाहिनी गंगा की मूर्तियों का निर्माण इस काल में ही हुआ।

भगवान शिव के ‘एकमुखी‘ एवं 'चतुर्मुखी' शिवलिंग का निर्माण सर्वप्रथम गुप्त काल में ही हुआ था। शिव के ‘अर्धनारीश्वर‘ रूप की रचना भी इसी समय की गयी। विष्णु की प्रसिद्ध मूर्ति देवगढ़ के दशावतार मंदिर में स्थापित है। वास्तुकला में गुप्त काल पिछड़ा था। वास्तुकला के नाम पर ईंट के कुछ मंदिर मिले हैं जिनमें कानपुर के भितरगांव का, गाज़ीपुर के भीतरी और झांसी के ईंट के मन्दिर उल्लेखनीय है।

चित्रकला

काल में चित्रकला उच्च शिखर पर पहुंच चुकी थी। विष्णु धर्मेन्तपुराण में मूर्ति, चित्र आदि कलाओं के विधान प्राप्त होते हैं। वात्सायन के कामसूत्र में 64 कलाओं के अन्तर्गत चित्रकला की जानकारी सम्भान्तक व्यक्ति (नागरिक) के लिए आवश्यक बताई गई है। गुप्तकालीन चित्रों के उत्तम उदाहरण हमें महाराष्ट्र प्रांत के औरंगाबाद में स्थित अजन्ता की गुफ़ाओं तथा ग्वालियर के समीप स्थित वाघ की गुफ़ाओं से प्राप्त होते हैं।

अजन्ता में निर्मित कुल 29 गुफाओं में वर्तमान में केवल 6 ही (गुफा संख्या 1, 2, 9, 10, 17) शेष है। इन 6 गुफाओं में गुफा संख्या 16 एवं 17 ही गुप्तकालीन हैं। अजन्ता के चित्र तकनीकि दृष्टि से विश्व में प्रथम स्थान रखते हैं। इन गुफाओं में अनेक प्रकार के फूल-पत्तियों, वृक्षों एवं पशु आकृति से सजावट का काम तथा बुद्ध एवं बोधिसत्वों की प्रतिमाओं के चित्रण का काम, जातक ग्रंथों से ली गई कहानियों का वर्णनात्मक दृश्य के रूप में प्रयोग हुआ है। ये चित्र अधिकतर जातक कथाओं को दर्शाते हैं। इन चित्रों में कहीं-कही गैर भारतीय मूल के मानव चरित्र भी

दर्शाये गये हैं। अजन्ता की चित्रकला की एक विशेषता यह है कि इन चित्रों में दृश्यों को अलग अलग विन्यास में नहीं विभाजित किया गया है।

अजन्ता में फ्रेस्कों तथा टेम्पेरा दोनों ही विधियों से चित्र बनाये गय हैं। चित्र बनाने से पूर्व दीवार को भली भांति रगड़कर साफ़ किया जाता था तथा फिर उसके ऊपर लेप चढ़ाया जाता था। अजन्ता की गुफा संख्या 16 में उत्कीर्ण 'मरणासन्न राजकुमारी' का चित्र प्रशंसनीय है। इस चित्र की प्रशंसा करते हुए ग्रिफिथ, वर्गेस एवं फर्गुसन ने कहा,- 'करुणा, भाव एवं अपनी कथा को स्पष्ट ढंग से कहने की दृष्टि' यह चित्रकला के इतिहास में अनतिक्रमणीय है। वाकाटक वंश के वसुगुप्त शाखा के शासक हरिषेण (475-500ई.) के मंत्री वराहमंत्री ने गुफा संख्या 16 को बौद्ध संघ को दान में दिया था।

गुफा संख्या 17 के चित्र को 'चित्रशाला' कहा गया है। इसका निर्माण हरिषेण नामक एक सामन्त ने कराया था। इस चित्रशाला में बुद्ध के जन्म, जीवन, महाभिनिष्क्रमण एवं महापरिनिर्वाण की घटनाओं से संबंधित चित्र उकेरे गए हैं। गुफा संख्या 17 में उत्कीर्ण सभी चित्रों में माता और शिशु नाम का चित्र सर्वोत्कृष्ट है। अजन्ता की गुफाऐं बौद्ध धर्म की 'महायान शाखा से संबंधित थी।

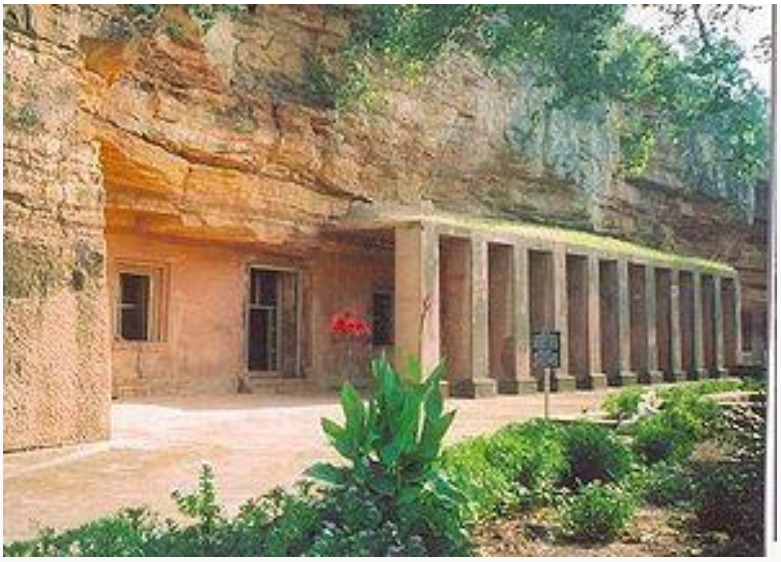

बाघ की गुफ़ाएं, ग्वालियर

निष्कर्ष

गुप्तकालीन शासकों ने एक विशाल साम्राज्य का निर्माण किया था। पाटलिपुत्र इस विशाल साम्राज्य की राजधानी थी। गुप्त शासकों ने उन क्षेत्रों के प्रशासन में कोई हस्तक्षेप नहीं किया जहाँ के शासकों ने उनके सामन्तीय आधिपत्य को स्वीकार कर लिया था, किन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं है कि गुप्त राजा

केवल अपने सामन्तों के माध्यम से शासन करते थे। उनकी एक सुव्यवस्थित प्रशासनिक व्यवस्था थी जो उन क्षेत्रों में लागू थी, जिन पर उनका सीधा-साधा नियंत्रण था।

सन्दर्भ

1. "स्वर्णिम युग की कला". टीडीआईएल. अभिगमन तिथि: 2001.
2. ईश्वरी प्रसाद, पद्मभूषण (जुलाई १९८६). *प्राचीन भारतीय संस्कृति, कला, राजनीति, धर्म तथा दर्शन.* इलाहाबाद: मीनू पब्लिकेशन, म्योर रोड. प॰ २०१ से २२०.